सामञ्जस्य एवं सम्भरणपर आधारित भारतीय संस्कृति

समाजनीति समीक्षण केन्द्र चेन्नै

Centre for Policy Studies

WWW.CPSINDIA.ORG

समस्त सृष्टिके साथ सामञ्जस्य भारतका मूल भाव है

भारतभूमिको अतुलनीय प्राकृतिक सम्पदा एवं उर्वरता प्राप्त है और यह विपुल समृद्धि विश्वकी सर्वाधिक अगम्य प्राकृतिक सीमाओंमें सुरक्षित है। भारतवर्षका व्यापक विस्तार है, परन्तु यह व्यापकता इतनी सुगठित है कि भौगोलिक दृष्टिसे यह देश किसी अलौकिक द्वीप-सा ही दिखाई देता है। इस अत्यन्त सुरक्षित एवं अत्यन्त उर्वरा भूमिपर भारतके लोग अनादिकालसे बाह्य आक्रमण एवं आन्तरिक अभावके भयसे मुक्त होकर सहज समृद्ध जीवनयापन करते आये हैं। दीर्घकालके इस सहज समृद्ध जीवनसे इस भूमिपर सर्वत्र व्याप्त एक समरस सभ्यता विकसित हुई है। भारतकी इस समरस सभ्यताका आश्रयस्थान सनातन धर्ममें है। अपने भव्य, समृद्ध एवं अभेद्य भूखण्डमें रहते हुए भारतीयोंने अपने आपमें, प्रकृतिमें और वस्तुतः समस्त सृष्टिमें सामञ्जस्यका दर्शन किया है। सृष्टिके किसी भावमें वैपरीत्यकी कल्पना भी उन्होंने नहीं की।

सनातन धर्मके गर्भमें सृष्टिके समस्त भावोंके प्रति अत्यन्त सम्मान एवं श्रद्धाका भाव ही प्रतिष्ठित है। समस्त सृष्टिके प्रति सम्मान एवं श्रद्धाका भाव रखना और समस्त सृष्टिके मध्य सामञ्जस्य बनाये रखते हुए जीनेकी आकांक्षा करना, यही सनातन धर्म और भारतीयताका विशिष्ट लक्षण है।

भारतने समस्त सृष्टिमें ऐक्य एवं अनुशासित क्रमका दर्शन किया है

भारतकी मान्यता है कि समस्त सृष्टि एक ही ब्रह्मकी बहुरूप अभिव्यक्ति है। सृष्टिके समस्त भावोंके प्रति गहन सम्मान एवं श्रद्धा रखनेका मूल अनुशासन इसी मान्यतामें आश्रित है। ब्रह्म सृष्टिके विभिन्न भावोंमें अपने आपको अभिव्यक्त करता है और युगके अन्तपर उन सब भावोंका पुनः अपने आपमें संकुचन कर लेता है। यह सब जो है वह ब्रह्मके व्यास एवं संकुचनकी लीला ही है। सृष्टि लीला है। परन्तु यह लीला अमर्यादित नहीं है। व्यास एवं संकुचनकी यह लीला निश्चित कालक्रमके अनुरूप चलती है। समस्त सृष्टि कालके इस अनुशासनसे बद्ध है, स्वयं ब्रह्म भी कालसे मर्यादित है।

ब्रह्मकी इस अनादि अनन्त लीलाका आभास कदाचित् प्रत्येक भारतीयके चित्तमें अंकित रहता है। सब भारतीय इस लीलाकी क्रमबद्धता एवं इस सबमें कालके अनुशासनकी अनिवार्यताके प्रति सचेत हैं। अतः सब भारतीयोंमें सृष्टिके सब भावोंके प्रति दायित्वपूर्ण सहोदरताका भाव रहता है। सब भारतीयोंमें कहीं यह आभास रहता है कि समस्त जड़ व चेतन जगत्में ब्रह्मका अंश विद्यमान है, अतः सृष्टिके सब जड़ एवं चेतन भाव सम्मान एवं श्रद्धाके अधिकारी हैं, उन सबका देशकालानुरूप संरक्षण एवं पोषण करना हमारा सहज दायित्व है।

समस्त जड़-चेतन सृष्टिमें ब्रह्मके अंशका दर्शन करनेके इस भारतीय अनुशासनमें अन्योंको अन्ध मूर्तिपूजा दिखाई देती है। भारतीयोंकी मान्यता है कि इस पृथिवीपर दायित्वपूर्ण जीवन-यापनका यही एक सही मार्ग है।

संरक्षण एवं संविभाग भारतीयताका मूल है

समस्त सृष्टिमें ऐक्य एवं ब्रह्मत्वके ज्ञानसे सम्पन्न भारतीयोंने सृष्टिके सब भावोंका संरक्षण एवं पोषण करनेके दायित्वको मानवजीवनके अनुल्लङ्घनीय अनुशासनकी प्रतिष्ठा दी है। सनातन धर्मकी सब अनुशासित एवं समर्थ गृहस्थोंसे यह अपेक्षा है कि वे स्वयं उपभोगकी ओर प्रवृत्त होनेसे पूर्व अपने दायित्वक्षेत्रमें आनेवाले सृष्टिके समस्त भावोंके लिये समुचित भागांश निकालें, स्वयं भोजन करनेसे पूर्व अन्य सबकी क्षुधाका शमन करें। भारतीय सभ्यतामें इस अनुशासनका उल्लङ्घनकर समस्त सृष्टिका संरक्षण एवं भरण-पोषण करनेके दायित्वकी उपेक्षा करनेवालोंको चोर-समान माना गया है। श्रीकृष्णने स्वयं श्रीमद्भगवद्गीतामें भारतीयोंको यह शिक्षा दी है कि सब भोग सृष्टिके समस्त भावोंकी उदारतासे ही हमें प्राप्त होते हैं, इस प्रकार समस्त भावोंके अंशदानसे प्राप्त हुए भोगोंको उन भावोंमें संविभाजित किये बिना जो अकेला स्वयं उनका उपभोग करता है, वह वस्तुतः चोर ही है। *तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः*। ईशोपनिषद्का उपदेश है कि इस जगत्में जो है वह सब उस एक ब्रह्मसे व्याप्त है। अतः जो भी भोग हमें प्राप्त होते हैं उनका समस्त सृष्टिमें संविभाजन करनेके उपरान्त ही उपभोग करना समुचित है। *तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः*।

भारत अपनोंका भरणपोषण करना जानता है

चीनी बौद्ध विद्वान् फाह्यान पाँचवी शताब्दीके प्रारम्भमें भारत यात्रापर आये। उनके यात्रावृत्तमें मगधराज्यका वर्णन इस प्रकार हुआ है–

इस देशके सामन्तों एवं गृहस्थोंने नगरमें चिकित्सालयोंकी स्थापना की है। सब दिशाओंसे दरिद्र असहाय विकलांग एवं रोगी इन चिकित्सालयोंमें पहुँचते हैं। वहाँ इन्हें सब प्रकारकी आवश्यक सहायता निःशुल्क प्राप्त होती है। चिकित्सक उनके रोगका निदान करते हैं और आवश्यकतानुसार उनके लिये भोजन, पेय, औषध एवं अनुपान आदिकी व्यवस्था की जाती है। वस्तुतः उनके व्याधि-शमनके लिये सब वाञ्छनीय पदार्थ उन्हें उपलब्ध करवाये जाते हैं। स्वस्थ होनेके उपरान्त वे अपनी सुविधानुसार वहाँसे प्रस्थान करते हैं।

भारत अपनोंका भरणपोषण करना जानता है

पाश्चात्य चिन्तक जर्मेन ग्रीयर मदर टेरेसाके कल्याणकारी कार्योंके सन्दर्भमें भारतकी अन्योंका भरण करनेकी सहज प्रवृत्तिका स्मरण करते हुए १९९७ ईसवी में एक अंग्रेज़ी पत्रिका में लिखती हैं–

राजकुमारी डायना और मदर टेरेसाके शोकमें ग्रस्त लोग पुनःपुनः कहते हैं कि जहाँ कोई किसीकी चिन्ता नहीं करता वहाँ वे सबकी चिन्ता करती थीं। यह उद्गार न केवल आजके समृद्ध विश्वके सन्दर्भ में असत्य है अपितु यह भारतके सन्दर्भमें भी असत्य है। भिक्षा माँगनेका व्यवहार भारतमें इसीलिये चल पाता है क्योंकि वहाँके लोगोंमें देनेकी प्रवृत्ति है। वहाँ कोई साधु-संन्यासी मात्र भगवावस्त्र, दण्ड एवं कमण्डल लेकर उपमहाद्वीपके एक छोरसे दूसरे छोरतक प्रवास कर सकता है। यह इसीलिये सम्भव है क्योंकि भारतके लोग जो किञ्चित् उनके पास है उसमें से कुछ अंश अन्योंके भरणके लिये देनेको सर्वदा प्रस्तुत हैं। मुम्बई महानगरकी विपन्न गलियोंमें भोजनालयोंके बाहर अनेक दरिद्र लोग पंक्तियोंमें बैठे देखे जा सकते हैं, क्योंकि भोजनालयोंके अपेक्षाकृत सम्पन्न ग्राहक बीसियों दरिद्रोंके दालभातकी व्यवस्था प्रायः करवा जाते हैं।

ईसाई धर्मावलम्बी मदर टेरेसाके प्रशंसकोंका सम्प्रदाय यदि हिन्दू भारतके प्रति तिरस्कार भावको प्रश्रय देता है तो इससे अच्छाईके स्थानपर बुराईका ही प्रसार होगा। मदर टेरेसा और उनकी सहयोगी धर्मसंघिनी बहिनें चाहे कितने ही दरिद्र भारतीयोंकी सहायता करती रहें, प्रायः एक अरब भारतवासी तो यह अन्यायपूर्ण लाञ्छन ढोते रहेंगे कि वे अपने ही लोगोंके भरणपोषणके प्रति उदासीन हैं अथवा उनमें ऐसा करनेका सामर्थ्य ही नहीं है।